ॐ सर्ववानर यूथ मुख्याम नमः

षोडशो अध्यायः

श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद

'देवासुर सम्पत्ति विभाग योग'

अध्याय

दोहा- कष्ट हरन, मंगल करन, असुर निकन्दन नाथ।
आर्त शरण, भवभय हरण, तब चरनन अब माथ।।

देव, दनुज दोनों यहां, करते संचित कोष।
अर्जुन जड़ चेतन यहां, सबमें हैं गुण दोष।।

बुद्धि, मन और आत्मा विषयों से ना अवरूद्ध हो।
बाह्य, अन्तर के विकारों से अभय संशुद्ध हो।। 01

दान, दम और योग स्थित, ज्ञान पाता तरलता।
यज्ञ और स्वाध्याय से, रहती है मन में सरलता।। 02

शांति, सत्य, अक्रोध से, रहती न मन में पिषुनता।
दया, मार्दव, शास्त्र पालन से न रहती है व्यथा।। 03

क्षमा, तेज और धैर्य संयुत और ना अति मान्यता।
भूत द्रोहों से विरत, पुरुषों की दैवीय सम्पदा।। 04

आसुरी संपति यहां, अज्ञान, दंभ और क्रोध है।
पुरुष, पारूष वृत्ति को, रहता न कोई बोध है।। 05

देव सम्पति पा यहां, हर जीव होता मुक्त है।
आसुरी सम्पति तो बस, अज्ञानता वश भुक्त है।। 06

दो तरह की प्रकृति अर्जुन, दो तरह की सृष्टि है।
दो तरह के मनुज हैं सुन, दो तरह की वृत्ति है।। 07

आसुरी सम्पति से रहती, आसुरी प्रवृत्ति है।
सत्य, शौच रहित असुर, पाते नहीं निवृत्ति है।। 08

ये सभी संभोग से उत्पन्न जग को जानते।
ब्रह्म ईश्वर आदि की निस्सारता ही मानते।। 09

अल्प बुद्धि, नष्ट आत्मा को न कुछ दृष्टव्य है।
क्रूर कर्मी कापुरुष का क्रूरता कर्त्तव्य है।। 10

मान, मद और दंभयुत पूरी न होती कामना।
मोह और अज्ञान वश, भ्रष्टाचरण ही धारणा।। 11

मृत्यु तक असंख्य चिन्ताओं में रहती आश्रिता।
विषय भोगों में ही सुख की, वृत्ति रहती निश्चिता।। 12

काम, क्रोधासक्त, आशा पाश जिनकी बाध्यता।
अस्तु करते भोग, द्रव्यों की ही हरदम चेष्टा।। 13

आज पूरन काज मेरा, सब मनोरथ लब्ध हैं।
और कल कुछ और पाने का ही बस कर्तव्य है।। 14

शत्रु मुझसे मृत हैं अब अन्यन्य शत्रु मारकर।
मैं सुखी बलवान हूँ, ऐश्वर्य भोगी सिद्धि कर।। 15

धनी, मानी, कुटुम्बी सब भोग मेरी साधना।
कौन है बलवान रिपु, मेरा करे जो सामना।। 16

दूँ या लूँ, भोगूं या त्यागूं, मेरा आत्माभिमान है।
ऐसे सब आसक्त मोही का नरक अवसान है।। 17

आत्मदर्पित, आत्म संभावित समर्पित आत्म को।
यज्ञ श्रद्धा विधि रहित, पाते नहीं अध्यात्म को।। 18

दर्प, बल और क्रोध युत की रहती प्रज्ञा मौन है।
निन्दा रत को क्या कहो, अन्तर विचरता कौन है।। 19

अस्तु द्वेषी क्रूर जिनका नित्य पापाचार है।
जन्म जन्मों तक नराधम भोगते संसार हैं।। 20

कामरत मुझसे विरत पाते न मुझको मूढ़ हैं।
नीच से अति नीच गति, आबद्ध नरक निगूढ़ हैं।। 21

काम, क्रोध और लोभ तीनों ही नरक के द्वार हैं।
जो करें परिहार इनका, ज्ञान के भण्डार हैं।। 22

हो विरत, नर सृष्टि में, कल्याण कर हैं, युक्त हैं।
भोगकर सुख शांति पाता, परम गति और मुक्त हैं।। 23

शास्त्र विधि जो त्याग कर दम्भाचरण में लिप्त है।
सिद्धि, सुख गति नष्ट कर बस पाप में संलिप्त है।। 24

कृत्य या अकृत्य सब कुछ, शास्त्र विधि संयुक्त है।
सभी संशय से परे बस, नियत कर्म ही युक्त हैं।। 25

दोहा- यों कह जगन्निवास प्रभु, हुये एक क्षण मौन।
केशव की कमनीयता, कहो कहै कवि कौन।।

मोह ज्ञान उतरे चढ़े अर्जुन घटिया घाट।
प्रनतपाल से पढ़ रहे, पृष्ठ-पृष्ठ पुनि पाठ।।

इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद देवासुर सम्पत्ति विभाग
योग षोडश अध्याय समाप्त।